International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979
Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 11; November 2017; Page No. 213-215

प्राचीन भारतीय इतिहास में धर्मशास्त्रीय एवं अर्थशास्त्रीय परम्परा में नारियों का सम्पत्तिक अधिकार का अध्ययन

डॉ० जितेन्द्र मिश्र
सहायक प्राध्यापक इतिहास, इंदिरा स्मृति महाविद्यालय, न्यू रामनगर, सतना, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
धर्म उन संस्कृत शब्दों में है जिनका प्रयोग कई अर्थों में होता आया है। यह शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना। इस तरह धर्मशास्त्रों का कार्य है वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों की शिक्षा देना। धर्मशास्त्रों में स्त्रियों कि सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार दिये हुये है। स्त्री धन के स्वरूप और उनके ज्ञान तथा अन्य प्रकार के सम्पत्ति सम्बन्धी विवेचना प्रस्तुत है, जिस पर स्त्रियों की निर्भरता दिखाई देती है। स्त्रीधन वह सम्पत्ति है जिस पर पत्नी का पूर्ण अधिकार होता है और उह उसका उपभोग भी कर सकती है। ऐसी मान्यता है कि वैदिक युग में कन्या को विवाह में दिए जाने वाले दहेज से स्त्रीधन की उत्पत्ति हुई। स्त्रीधन पूर्णतः स्त्रियों के स्वामित्व में था, जिसे वह आवश्यकता पड़ने पर बेंच भी सकती थी। परन्तु व्यवस्थाकारों ने कुछ नियम इस तरह भी बनाए कि कुछ भाग पर परिवार या पति का नियन्त्रण रहें, जिसे वह बेंच नही सकती थी। स्त्रीधन के लिए उत्तराधिकार के नियम भी है। प्रत्येक युग में स्त्रीधन का उत्तराधिकार भारतीय विधान का सबसे जटिल अंग रहा है। इसलिए कभी भी उसकी एक रूप व्यवस्था नहीं हो सकी।

शब्द कुंजी : प्राचीन भारतीय इतिहास, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, सम्पत्तिक, शिक्षा।

प्रस्तावना
अति प्राचीन काल से ही धर्मशास्त्र के अन्तर्गत बहुत से विषयों की चर्चा होती रही है। प्राचीन काल में धर्म सम्बन्धी धारणा बड़ी व्यापक थी और मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती थी। धर्मशास्त्रकारों के मतानुसार धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं हैं, प्रत्युत यह जीवन का एक ढंग या आचरण संहिता है, जो समाज के किसी अंग एवं व्यक्ति के रूप में मनुष्य कर्मो एवं कृत्यों को व्यवस्थापित करता है तथा उसमें क्रमशः विकास लाता हुआ उसे मानवीय अतिस्तत्व के लक्ष्य तक पहुंचने के योग्य बनाता है।
धर्मशास्त्रों में स्त्रीधन के विषय में मत–मतान्तर हैं। वैदिक साहित्य में भी इसकी ओर संकेत मिलता है। ऋग्वेद के विवाह संबंधी दो मन्त्रों (10/85/13 एवं 38) में वधू के साथ वर के घर के लिए निम्न उपहार भेजने का वर्णन आया है – सूर्या की वधू– भेट (जिसे सविता ने भेजा था), पशु (जो अधा अर्थात् मघा में हत होते हैं) ..... आदि।[1]
स्त्रीधन का शाब्दिक अर्थ है 'स्त्री की सम्पत्ति'। किन्तु प्राचीन स्मृतियों ने इस शब्द को उस प्रकार की सम्पति के विशिष्ट प्रकारों तक सीमित रखा है, जो स्त्री को विशिष्ट अवसरों या जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्रदत्त होते हैं। धीरे–धीरे ये प्रकार, विस्तार एवं मूल्य में बढ़ते गये। हमें इस अर्थ में स्त्रीधन के विकास एवं विषय–वस्तु का अध्ययन करना है। स्त्रीधन की एक विशेषता यह रही है कि गौतम के काल से आज तक यह प्रथमतः स्त्रियों को ही प्राप्त (न्यस्त) होता रहा है। धर्मशास्त्र – ग्रन्थों में सबसे पुरानी परिभाषा मनु[2] की है – "विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो कुछ दिया गया, विदाई के समय जो कुछ दिया गया, स्नेह (प्रीति) वश जो कुछ दिया गया, जो कुछ भ्राता, माता या पिता से प्राप्त हुआ – यही छः प्रकार का धन स्त्रीधन है।" मनु ने संभवतः एक प्रकार और जोड़ दिया है, अन्वाधेय (बाद में मिलने वाली भेंट)। यज्ञ[3] ने स्त्रीधन के निम्न प्रकार बताये है – "पिता, माता, पति या भ्राता द्वारा प्रदत्त या जो कुछ विवाह –अग्नि के समक्ष प्राप्त होता है, या पति द्वारा अन्य स्त्री से विवाह के समय जो कुछ प्राप्त किया जाय– ये भी स्त्रीधन में गिने जाते हैं और जो कुछ स्त्री के संबंधियों द्वारा दिया जाता है, शुल्क एवं विवाहोपरान्त की भेंट भी।"[4]
स्मृतिकारों में कात्यायन ने 27 श्लोकों में स्त्रीधन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने मनु, यज्ञ, नारद एवं विष्णु के छः स्त्रीधन–प्रकारों का वर्णन किया है – "विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो दिया जाता है उसे बुद्धिमान लोग अध्यग्नि स्त्रीधन कहते हैं। पति के घर आते समय जो कुछ स्त्री पिता के घर से पाती है उसे अध्यावहनिक स्त्रीधन कहा जाता है। श्वसुर या सास द्वारा स्नेह से जो कुछ दिया जाता है और श्रेष्ठ जनों की वन्दन करते समय उनके द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है उसे प्रतिदत्त स्त्रीधन कहा जाता है। वह शुल्क कहलाता है जो बरतनों, भारवाही, पशुओं, दुधारू पशुओं, आभूषणों एवं दासों के मूल्य के रूप में प्राप्त होता है। विवाहोपरान्त पति–कुल एवं पितृ–कुल के बन्धु–जनों से जो कुछ प्राप्त होता है वह अन्वाधेय स्त्रीधन कहलाता है।
कौटिल्य[5] ने शुल्क, अन्वाधेय, आधिवेदनिक एवं बन्धुदत्त को स्त्रीधन के प्रकारों के रूप में लिया है। स्मृतियों के कथनों से व्यक्त होता है कि स्त्रीधन एक प्रकार का ऐसा धन है जिसमें पहले छः प्रकार की सम्पत्ति की गणना होती थी और आगे चलकर वह नौ प्रकार की हो गयी तथा काल्यायन के समय में उसमें सभी प्रकार की (चल एवं अचल) सम्पत्ति सम्मिलित हो गयी, जिसे कोई स्त्री कुमारी अवस्था में या विवाहित होते समय या विवाह के उपरान्त अपने माता–पिता या कुल या माता–पिता के संबंधियों या पति एवं उसके कुल से (पति द्वारा प्रदत्त अचल सम्पत्ति को छोड़कर) प्राप्त करती है। वह धन जिसे स्त्री विवाहोपरान्त स्वयं (अपने परिश्रम) अर्जित करती है या बाहरी लोगों से प्राप्त करती है स्त्रीधन नही कहलाता।
कात्यायन[6] ने एक विशेष नियम दिया है – "यदि पति स्त्रीधन देने की प्रतिज्ञा कर ले तो उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र (अपने पुत्र या विमाता–पुत्र) को उसे ऋण के रूप में चुकाना चाहिए, किन्तु ऐसा तभी होता है जब कि विधवा पति के कुल में ही रहे और अपने मैके में न जाय।" स्मृतिचन्द्रिका एवं व्यवहारप्रकाश ने कहा है कि पौत्रो एवं प्रपौत्रों को भी इसी प्रकार पितामह एवं

प्रपितामह द्वारा प्रतिश्रुत स्त्रीधन ऋण के रूप में लौटाना चाहिए। यदि स्त्री दुश्चरित हो, व्यभिचार में धन का अपव्यय करती हो तो व्य.प्र. एवं वि.चि. क मत से उसका स्त्रीधन छीन लेना चाहिए।

इस विषय में हिन्दू व्यवहार – शास्त्र में बहुत से मत–मतान्तर पाये जाते हैं। किन्तु एक बात में सबका मत एक है, स्त्रीधन का उत्तराधिकार सर्वप्रथम कन्याओं को प्राप्त होना चाहिए, अर्थात कन्याओं को पुत्र की अपेक्षा वरीयता मिलनी चाहिए। किन्तु आगे चलकर कुछ लेखकों ने पुत्रों को कन्याओं के साथ जोड़ दिया और कुछ स्त्रीधन–प्रकारों में पुत्रों को वरीयता दे दी है। इसका संभवतः कारण यह था कि आगे चलकर स्त्रीधन का विस्तार हो गया और लोगों को यह बात नहीं लगी कि स्त्रियों की (अधिक) लम्बी सम्पत्ति मिले। इस विषय में लोकाचार एवं काल–क्रम का विशेष हाथ रहा है। भिन्नता ने बहुधा कहा है कि उनकी व्याख्या लोकाचार पर भी निर्भर रहती है। स्त्रीधन के उत्तराधिकार की भिन्नता स्त्री के विवाहित होने या न होने, या अनुमोदित विवाह प्रथा से विवाहित होने तथा स्त्रीधन के प्रकार या व्यवहार–शाखा पर अवलम्बित हैं।

यह प्राचीनतम उक्ति गौतम[7] की है – "स्त्रीधन (सर्वप्रथम) पुत्रियों को मिलता है, (प्रतियोगिता होने पर) कुमारी कन्याओं को वरीयता मिलती है, तथा विवाहितों में उसको जो निर्धन होती हैं, वरीयता मिलती है।" याज्ञ.[8] के अनुसार कन्याएँ माता का धन पाती हैं और उनके अभाव में पुत्रों का अधिकार होता है। याज्ञ. ने पुनः कहा है कि स्त्रीधन कन्याओं को मिलता है किन्तु यदि स्त्री सन्तानहीन बन जाती है तो स्त्रीधन पति को मिल जाता है।

'मितक्षारा' के अनुसार स्त्रीधन के उत्तराधिकार की दो शाखाएँ हैं, एक शुल्क के विषय में, दूसरी स्त्रीधन के अन्य प्रकारों के लिए। 'मितक्षरा' ने गौतम का उल्लेख करते हुए व्यवस्था दी है कि शुल्क सर्वप्रथम सहोदरों (सगे भाइयों) को मिलना चाहिए और उनके अभाव में माता को। कुछ टीकाओं में, यथा – सुबोधिनी, दीपकलिका, हरदत्त[9] आदि ने व्यवस्था दी है कि शुल्क पहले माता को मिलता है, और उसके अभाव में सहोदरों (सगे भाइयों) को मिलना चाहिए, किन्तु 'दायभाग'[10] ने 'मिताक्षरा' का अनुकरण किया है। यह आश्चर्य है कि 'मदनपारिजता' ने, जिसे सुबोधिनी के लेखक ने अपने आश्रयदाता मदनपाल के नाम से लिखा है, व्यवस्था दी है कि शुल्क सर्वप्रथम भाइयों को मिलता है और उनके अभाव में माता को। क्या सुबोधिनी की मुद्रित प्रति अशुद्ध है या लेख ने अपना मत परिवर्तित कर दिया है?

कुमारी के सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में मिताक्षरा तथा अन्य लेखकों के मतों में कोई अन्तर नहीं है। 'मिताक्षरा' ने बौधायन का उल्लेख करके कहा है कि कन्या के मृत हो जाने पर सर्वप्रथम सगे भाइयों को उसका धन मिलता है और तब माता और उसके उपरान्त पिता को मिलता है। व्य.प्र. में जोड़ दिया है कि पिता के अभाव में कन्या का धन निकटतम सपिण्ड को मिलता है। याज्ञ.[11] का कथन है कि यदि विवाह के लिए प्रतिश्रुत हो जाने पर विवाह के पूर्व कन्या मर जाती है तो होने वाले वर को शुल्क या अन्य भेंटे वापस मिल जाती है, किन्तु उसे कन्या के कुल के व्यय में अपने व्यय को घटा देने का अधिकार प्राप्त है।

आचार्य कौटिल्य का व्यक्तित्व एक पारंगत राजनैतिक के रूप में मौर्य साम्राज्य के विपुल यश के साथ एकप्राण होकर, एक ओर तो भारत के राजनीतिक इतिहास में अपनी कीर्ति–कथा को अमर बनाये है और दूसरी ओर अपनी अतुलनीय, अद्‌भुत कृति के कारण संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने विषय का एकमात्र विद्वान होने का गौरव उन्हें प्राप्त हैं। इन असाधारण खूबियों के कारण ही आचार्य कौटिल्य का नाम – माहात्म्य की कथाएँ, पुराणों से लेकर काव्य, नाटक और कोष–ग्रंथों में सर्वत्र परिव्याप्त हैं। कौटिल्य द्वारा नंद–वंश का विनाश और मौर्य–वंश की प्रतिष्ठा से संबंधित विष्णुपुराण में एक कथा आती है।

डॉ. शामशास्त्री ने सन् 1909 में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का प्रकाशन एवं अनुवाद करके भारतीय शास्त्र–जगत में एक नवीन चेतना की उद्‌भूति की। पण्डित टी. गणपति शास्त्री ने 'श्रीमूल' नाक अपनी टीका के साथ इस महान ग्रंथ का प्रकाशन किया है। डॉ. जाली एवं श्मिट (स्मित) ने महत्वपूर्ण भूमिका एवं माधवयज्वा की नयचन्द्रिका के साथ इसका सम्पादन किया है। इस ग्रंथ में डॉ. शामशास्त्री के 1919 ई. वाले संस्करण का उपयोग किया गया है। इस ग्रंथ को लेकर उग्रवाद–विवाद उठे हैं। इसके लेखक, प्रणयन–सत्यता, काल आदि विषयों पर बहुत सी व्याख्याएँ शंकाएँ एवं समाधान उठाये गये है। अर्थशास्त्र पर उपस्थित प्राचीनतम ग्रंथ कौटिलीय ही है। अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र में आदर्श संबंधी विभेद है, किन्तु वास्तव में, अर्थशास्त्र की एक शाखा धर्मशास्त्र है, क्योंकि धर्मशास्त्र में राजा के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों की चर्चा होती है।[12] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'धर्मस्थीय' एवं 'कण्टकशोधन' नामक दो प्रकरण हैं।

कौटिलीय ने चारों वेदों, अर्थवेद के मन्त्रप्रयोग, छः वेदांगों, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र की चर्चा की है इसमें साख्य, योग एवं लोकायत की शाखाओं की ओर भी संकेत आया है। इसने मौहूतिक, कार्तान्तिक (फलित ज्योतिष जानने वाले), वृहस्पति ग्रह एवं शुक्र ग्रह की भी चर्चा की है। धातुशास्त्र का नाम भी आया है। उस समय संस्कृत ही राजभाषा थी। शासनाधिकार में काव्य–गुणों की भी चर्चा की गयी है, यथा माधुर्य, औदार्य, स्पष्टतत्व, जो अलंकार शास्त्र के प्रारंभ की सूचक है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि दूसरी शताब्दी (150ई.) में रूद्रदामन के अभिलेख में काव्य–गुणों की चर्चा है। कौटिल्य ने प्रस्तर एवं ताम्र पर तक्षित अनुशासनों की कोई चर्चा नहीं है। उनके अर्थशास्त्र[13] में वैशिक–कलाशान की ओर भी संकेत है।

कौटिल्य ने स्त्री के अधिकारों के साथ स्त्रीधन के वर्णन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। स्त्रीधन से पहले उनके अधिकारों और व्यवहार का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि विवाह के बन्धन से भी स्त्री के अधिकारों में परिवर्तन आता है। जिसमें धन सम्बन्धी अधिकार भी सम्मिलित हैं।

निष्कर्ष

स्त्री का धन दो प्रकार का होता है – (1) वृत्ति और (2) आवध्य। स्त्री का वृत्ति धन वह है जो स्त्री के नाम से बैंक आदि में जमा किया गया हो। उसकी रकम कम–से–कम दो हजार तक होनी चाहिए। गहना या जेबर आदि आवध्य धन कहलाते है, जिनकी तादाद का कोई नियम नहीं है। किसी स्त्री का पति परदेश चला जाय और उसकी जीविका निर्वाह के लिए कोई जरिया न हो तो वह स्त्री अपने पुत्र और अपनी पतोहू के जीवन–निर्वाह के लिए अपने निजी धन को खर्च कर सकती है। किसी विपत्ति, बीमारी, दुर्भिक्ष या इसी तरह के आकस्मिक संकट से बचने के लिए और किसी धर्म–कार्य में पति भी यदि स्त्री के निजी धन को खर्च करता है तो उसमें कोई भी बुराई नहीं। इसी प्रकार दो सन्तान पैदा होने पर स्त्री–पुरुष दोनों मिलकर यदि उस धन को खर्च करें तब भी कोई दोष नहीं, और ऐसे पति–पत्नी जिनका विवाह धर्मानुकूल हुआ हो, कोई सन्तान पैदा न होने पर तीन वर्ष तक उस धन को खर्च कर सकते हैं। जिन्होंने गान्धर्व या आसुर विवाह किया हो और आपसी सलाह से वे स्त्री–धन को खर्च कर डालें तो उनसे व्याज सहित मूलधन जमा करा लिया जाय। जिन्होंने राक्षस तथा पैशाच विधि से विवाह किया हो ऐसे पति–पत्नी यदि स्त्री धन को खर्च

कर डालें तो उन्हें चोरी का दण्ड दिया जाय। इस तरह कौटिल्य ने नारियों के धन पर नारियों के सम्पत्तिक अधिकार तथा उसके व्यवहार पर अलग–अलग विधान कर प्रकाश डाला है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्याया वहुतः प्रागात्सविता यमवासजत्। अधासु गावोऽर्जुन्योः पर्युह्वाते।। ऋग्वेद (10/85/13 एवं 38)
2. मनुस्मृति 9/194
3. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/143–144.
4. अध्यग्न्यध्यावहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि। भ्रातृमातृपितृ षड्विधं स्त्रीधन स्मृतम्।। मनु (9/194) (दायभाग, 8), पितृमातृपतिभ्रतृदत्तमध्यग्न्युपागतम्। आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।। बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च। याज्ञ, (2/143–144).
5. कौटिल्य का अर्थशास्त्र 3/2
6. कात्यायन 916
7. गौतम धर्मसूत्र 28/22
8. याज्ञवल्क्य 2/117
9. गौतम 28/23
10. नारद स्मृति 4/3/28
11. याज्ञवल्क्य 2/146
12. धर्मशास्त्रान्तर्गतमेव राजनीतिलक्षणमर्थशास्त्रमिदं विवक्षितम् मिताक्षरा (याज्ञ. 2, 21)
13. कौटिल्य का अर्थशास्त्र 2/27